Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.471
Volume - 6, Issue - 6, June - 2023 Publication Date: 20/06/2023

DOIs:10.2018/SS/202306004 --:-- Research Paper / Article / Review

श्रीमद्भगवद्गीता में वैश्विक कल्याण की भावना

मंजू सैनी
संस्कृत प्राध्यापिका
शहीद उधम सिंह राजकीय महाविद्यालय, मटक माजरी (इंद्री) करनाल, हरियाणा
Email - manjusam444@gmail.com

शोध-सार : श्रीमद्भगवद्गीता मानवीय मूल्यों और वैश्विक कल्याण की शिक्षा देने वाली विश्व की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह संपूर्ण मानव जाति का धर्मशास्त्र है। यह ज्ञान का अथाह सागर है जिसमें गोता लगाकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर जाता है। श्रीमद् भगवत गीता के उपदेश जाति, काल ,देश आदि की सीमाओं से परे है ।इसकी उपयोगिता समस्त मानव जाति के लिए सिद्ध है।इसमें वर्णित आत्मविज्ञान ,कर्म योग ,भक्ति योग, ज्ञान योग आदि विषय मानव जीवन के लिए कल्याणकारी मार्ग को प्रशस्त करते हैं । श्रीमद्भगवद्गीता आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिकता रखती है जितनी प्राचीन युग में। विश्वसाहित्य में श्रीमद्भगवद्गीता के समान अन्य कोई ग्रंथ नहीं मिलता जो संसार के दुखों से त्रस्त मनुष्य को शांति दे कर उसे निष्काम कर्तव्य पालन में लगाये। आज के संदर्भ में वैश्विक कल्याण के लिए भगवतगीता के सिद्धांत अति आवश्यक है।विश्व का कल्याण तभी संभव हो सकता है जब एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ ,एक प्राणी का दूसरे प्राणी के साथ समत्व का भाव हो।समत्व भाव से युक्त, मन की कामनाओं को छोड़कर मनुष्य अपने आप में ही संतुष्ट होकर रहता है तब स्थितप्रज्ञ कहलाता है ।

मुख्य-शब्द : वैश्विक, स्थितप्रज्ञ, सात्विक, कृपण, आत्मसंयम, निष्काम कर्मयोग, योगक्षेम, उद्विग्न ।

श्रीमद्भगवद्गीता मानवीय मूल्यों और वैश्विक कल्याण की शिक्षा देने वाली विश्व की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह संपूर्ण मानव जाति का धर्मशास्त्र है। यह ज्ञान का अथाह सागर है जिसमें गोता लगाकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर जाता है। श्रीमद् भगवत गीता के उपदेश जाति, काल ,देश आदि की सीमाओं से परे है ।इसकी उपयोगिता समस्त मानव जाति के लिए सिद्ध है।इसमें वर्णित आत्मविज्ञान ,कर्म योग ,भक्ति योग, ज्ञान योग आदि विषय मानव जीवन के लिए कल्याणकारी मार्ग को प्रशस्त करते हैं । श्रीमद्भगवद्गीता आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिकता रखती है जितनी प्राचीन युग में। विश्वसाहित्य में श्रीमद्भगवद्गीता के समान अन्य कोई ग्रंथ नहीं मिलता जो संसार के दुखों से त्रस्त मनुष्य को शांति दे कर उसे निष्काम कर्तव्य पालन में लगाये। आज के संदर्भ में वैश्विक कल्याण के लिए भगवतगीता के सिद्धांत अति आवश्यक है।विश्व का कल्याण तभी संभव हो सकता है जब एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ ,एक प्राणी का दूसरे प्राणी के साथ समत्व का भाव हो।समत्व भाव से युक्त, मन की कामनाओं को छोड़कर मनुष्य अपने आप में ही संतुष्ट होकर रहता है तब स्थितप्रज्ञ कहलाता है ।1

स्थितप्रज्ञ मनुष्य के विषय में कहा गया है कि जिससे लोग उद्विग्न नहीं होते अथवा जो लोगों से उद्विग्न नहीं होता, ऐसे ही जो मनुष्य नित्य संतुष्ट हैं ,जो हर्ष, खेद ,भय, विषाद ,सुख-दुख आदि द्वन्दों से मुक्त है और सदा अपने आप में ही संतुष्ट हैं।2 'आत्मास्तु कामाय सर्वम् प्रियम् भवति ' कोई भी मनुष्य जब अपनी आत्मा में संतुष्ट हो जाता है अर्थात् उसे अपनी आत्मा में प्रीति का अनुभव होता है, तब उसे संसार में प्रत्येक पदार्थ ,व्यक्ति प्रिय दिखाई देने लगता है तो इस प्रकार वह स्वयं का कल्याण करता हुआ जगत् के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

गीता के छठे अध्याय में कहा गया है 'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि आत्मनि' अर्थात् यदि मैं प्राणी मात्र में हूं तो सभी प्राणी मुझ में है।3 अतः मनुष्य को जीवन के किसी भी क्षेत्र में कार्य करते हुए दूसरे प्राणी मात्र के साथ इस प्रकार

का व्यवहार करना चाहिए जैसा कि वह स्वयं के साथ अपेक्षित करता है।परंतु यदि मनुष्य प्राणी मात्र में एक ही आत्मा को मानकर सदैव प्राणियों के ही हित करने में लग जाए तो उस मनुष्य के जीवन का निर्वाह कैसे होगा? फिर जब मनुष्य अपना ही योगक्षेम नहीं चला सकेगा, तब अन्य लोगों का कल्याण कैसे कर सकेगा।तो इस प्रश्न का उत्तर भगवान श्री कृष्ण ने गीता में इस प्रकार दिया हैं कि तेषाम् नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् 4अर्थात् उन नित्य योग युक्त पुरुषों का योगक्षेम मैं किया करता हूं ।यहां योग से तात्पर्य ना मिली हुई वस्तु का मिल जाना और क्षेम से तात्पर्य मिली हुई वस्तु की रक्षा करना है । विद्वान महापुरुषों ने कहा भी है कि जिसकी बुद्धि लोक कल्याणकारी कार्य करने की हो गई उसे खाना पीना नहीं छोड़ना पड़ता, अपितु उसकी बुद्धि इस प्रकार के चिंतन से युक्त हो जाती है कि वह लोक के उपकार के लिए ही देह धारण करता है।

मनुष्य के स्वभाव में स्वार्थ के साथ ही परोपकार बुद्धि की सात्विक मनोवृति भी जन्म से स्वतंत्र रूप से पायी जाती है ।जब कोई मनुष्य अपने सुख की इच्छा के लिए दूसरे प्राणी को दंड देता है या हिंसा करता है तो वह स्वार्थ भावना है। परंतु स्वयं के सुख की चिंता ना करके स्वयं कष्टों को सहते हुए प्राणी मात्र के जीवन का उद्धार करना परार्थ भावना है । भर्तृहरि ने भी स्वार्थ और परार्थ के विषय को उठाते हुए कहा है कि एके सत्पुरुषा:परार्थघटका: स्वार्थ परित्यज्य ये। सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत: स्वार्थाविरोधेन ये।तेऽमी मानुषराक्षसा: परहितं स्वार्थाय निहनन्ति ये।ये निहनन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।5 अर्थात् वे ही सच्चे सज्जन पुरुष है जो अपने हित का त्याग कर दूसरों का भला करते हैं और जो अपने स्वार्थ को ना छोड़कर दूसरों के लोक हित के लिए प्रयास करते हैं वह सामान्य पुरुष होते हैं और जो अपने हित के लिए दूसरों का नुकसान करते हैं उन्हें मानव रूपी राक्षस समझना चाहिए, परंतु कुछ मनुष्य निरर्थक ही दूसरों को हानि पहुंचाते हैं ऐसे मनुष्य को क्या नाम दिया जाए यह कोई नहीं जानता।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण अर्जुन को कर्म योग सिद्धांत का विवेचन करते हुए कहते हैं कि 'कर्मणेवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' अर्थात् उसका कर्म करने में ही अधिकार है कर्म के फल की इच्छा में नहीं। 6 अर्जुन को क्षत्रिय धर्म के अनुसार ही कर्म को करना चाहिए ।कर्म योग के सिद्धांत को बताते हुए श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि कर्म करने वाले दो प्रकार के लोग होते हैं पहले प्रकार के लोग फल पर इस प्रकार दृष्टि लगाकर कर्म करते हैं कि उससे कितने लोगों को कितना सुख प्राप्त होगा ।दूसरे प्रकार के लोग बुद्धि को सम और निष्काम रखकर कर्म करते रहते हैं फिर चाहे कर्म और धर्म के सहयोग से उन्हे जो भी चाहे परिणाम प्राप्त हो।इसमें से फल हेतु अर्थात फल पर दृष्टि रखकर कर्म करने वाले लोग नैतिक दृष्टि से कृपण होते हैं परंतु एकाग्र बुद्धि से कर्म वाले लोग श्रेष्ठ होते हैं। श्रीमद्भगवत गीता में श्रीकृष्ण ने यज्ञ करने के बाद शेष बचे हुए अन्न को ग्रहण करने वाले को अमृताशी कहा है 7क्योंकि उनकी दृष्टि से जगत् का धारण व पोषण करने वाला कर्म ही यज्ञ है अतः यह लोककल्याण कारक कर्म करते समय मनुष्य का उसी से अपना जीवन निर्वाह भी सरलता से हो जाता है और वह परमसुख व आनंद को भी प्राप्त करता है।इसी प्रकार राजा भी अपना स्वार्थ न होते हुए राजधर्म के कार्यों में कष्टों को वहन करते हुए लोक कल्याण भी करता है और अपना जीवन निर्वाह भी करता है।कवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में राज धर्म की उत्तम स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यते लोग हेतोः,प्रतिदिनथवा ते वृत्तिरेवंविधैव॥8 अर्थात् तुम अपने सुख की परवाह ना करके लोक हित के लिए प्रतिदिन कष्ट उठाते रहते हो अथवा तुम्हारी वृत्ति ही इस प्रकार की है।

'उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुंबकम् 'यह सारी पृथ्वी और प्राणी मात्र ही हमारा परिवार है। ' वसुधैव कुटुंबकम् 'हमारे सनातन धर्म का मूल सिद्धांत और विचारधारा है । श्रीमद्भगवत गीता में वसुधैव कुटुंबकम् की भावना यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती है ।भगवान श्री कृष्ण संपूर्ण मानव जाति की रक्षा के लिए और उसके नैतिक उत्थान के लिए इस पर बल भी देते हैं ।नैतिक शब्द का भाव तत्व है नैतिकता। सभी मानव एक समान है, वह जाति, रंग-रूप ,धर्म के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित हैं ।इसलिए जैसे सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सगुणोपासना की आवश्यकता होती है उसी प्रकार वसुधैव कुटुंबकम भावना से युक्त ऐसी बुद्धि पाने के लिए देशाभिमान ,कुलाभिमान ,जात्याभिमान, स्वाभिमान, धर्माभिमान आदि की भी आवश्यकता होती है । कालिदास ने कुमारसंभव में कहा है 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं 9'अर्थात् शरीर ही सब धर्मों का मूलभूत साधन है ।अपने शरीर की उपासना ही मनुष्य का प्रथम कर्तव्य हैं।जब सभी मानव अपने परिवार, जाति ,देश को एक समान मानते हुए इससे आगे बढ़कर वैश्विक स्तर पर इस भावना को अपनाएं तो वही वसुधैव कुटुंबकम् की भावना सही रूप में चरितार्थ होती हैं ।

श्रीमद्भगवत गीता में 'सर्व भूत हिताय 'के द्वारा विश्व कल्याण की भावना को उठाया गया है ।सर्व भूत हिताय से तात्पर्य अधिकांश लोगों के अधिक हित से करें तो इसका सारांश यह है कि जिससे अधिकांश लोगों का अधिक हित होता हो ,उसी बात को नीति की दृष्टि से उचित व ग्राहय मानना चाहिए। इस प्रकार का आचरण करना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है । परंतु कई बार अधिकांश लोगों का हित नैतिकता के मूल्यों से परे होता है क्योंकि लोकसंख्या की न्यूनता या अधिकता का नैतिकता के साथ कोई नित्य संबंध नहीं होता ।क्योंकि कभी-कभी जो बात साधारण लोगों के लिए सुखदायक प्रतीत होती है वही बात किसी विद्वान, दूरदर्शी पुरुष को परिणामस्वरूप में हानिप्रद दिखाई पड़ती है।

अतः जब सभी प्राणियों के हित की बात हो तो उसमें नैतिकता का समावेश आवश्यक है। उदाहरण स्वरूप महाभारत में पांडवों का पक्ष धर्म का पक्ष है तथा कौरवों का पक्ष अधर्म का। अतः स्पष्ट है कि धर्म और अधर्म का यह संघर्ष नैतिकता और अनैतिकता का संघर्ष है। इन्हीं नैतिक मूल्यों के निर्धारण में मानव कल्याण की भावना निहित होती है जिसके द्वारा मानवता की स्थापना होती है। इसी कारण से अनेक ज्ञानी पुरुषों के वचनों में, विभिन्न देशों , संप्रदायों, जातियों के धर्म ,संस्कृति में भिन्नता होते हुए भी लोकहित से संबंधित धारणाओं में एकरूपता देखी जाती है।श्रीमद्भगवद्गीता में भी कर्म योग से युक्त ज्ञानी पुरुष का लक्षण का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ' सर्वभूतहिते रता:'10 अर्थात् ज्ञानी पुरुष सब प्राणियों का कल्याण करने में भी सदा मगन रहते हैं ऐसे आत्म संयम से युक्त ज्ञानी पुरुष को ब्रह्म निर्वाण रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है ।सज्जन पुरुष कभी भी हृदय में लोक कल्याण करने की भावना लेकर लोक कल्याण नहीं करते। जिस प्रकार सूर्य का स्वभाव प्रकाश फैलाना है, उसी प्रकार सज्जन पुरुष का भी सभी प्राणी मात्र का कल्याण करने का स्वभाव बन जाता है। ऐसा स्वभाव बन जाने पर सूर्य जैसे दूसरों को प्रकाश देते हुए स्वयं भी प्रकाशित होता है उसी प्रकार सज्जन पुरुष के प्राण त्याग से ही उनका योग क्षेम स्वयं सिद्ध हो जाता है ।भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते भी हैं कि कल्याण कारक कर्म करने वाले किसी भी पुरुष की दुर्गति नहीं होती।

विचारों का हमारे मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव पड़ता है और इससे हमारे व्यवहार में भी परिवर्तन आ जाता है। आत्मवत् सम-बुद्धि से दूसरों के साथ व्यवहार करने वाले पुरुष को पृथक् उपदेश देने की जरूरत नहीं होती जैसे लोगों पर दया करना ,यथाशक्ति उनकी मदद करना, उनसे प्रीति रखना ,किसी को धोखा मत देना ,सबके साथ समान व्यवहार करना आदि यह सब उपदेश उस मनुष्य के व्यवहार का एक अंग बन जाते हैं।इसलिए श्रीमदभगवत गीता में निष्काम कर्म योग, सभी प्राणियों को समान रूप से देखना , शांति व्यवस्था को बनाये रखना ,अन्याय को दूर कर न्याय की व्यवस्था साबित करना ,सभी प्राणियों का कल्याण करना आदि भावनाएँ विश्व कल्याण के लिए अति महत्वपूर्ण है । अतः यदि श्रीमद् भगवत गीता के प्रतिपादित सिद्धांतों के विचारों का प्रचार प्रसार हो ,निष्काम कर्मयोग की भावना को संपूर्ण राष्ट्र ही अपने जीवन की पद्धति बना ले तो विश्व की मुख्यतः सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है एवं वैश्विक कल्याण की भावना साकार हो सकती हैं।

सन्दर्भ :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.55
2. लोकमान्यबाल गंगाधर तिलक: श्रीमदभगवतगीता रहस्य
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 6.29
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 9.22
5. भर्तृहरि, नीतिशतकम्,75
6. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.47
7. श्रीमद्भगवद्गीता 4.31
8. कालिदास,अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7.7
9. कालिदास,कुमारसम्भवम्, 5.33
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 5.25